आचार्य श्री एवं नारी-जागरण

☐ श्रीमती सुशीला बोहरा

आचार्य श्री हस्तीमलजी म. सा. विशुद्ध श्रमणाचार के प्रतीक, धर्म जगत् के प्रबल प्रहरी, युग प्रवर्तक संत एवं इस युग की महान् विभूति थे। ७० वर्ष की सुदीर्घावधि तक उत्कट अध्यात्म-साधना में लीन एवं आत्म-चिंतन में निरन्तर निरत रहकर आपने जहाँ अनेक आध्यात्मिक उपलब्धियों को प्राप्त किया, वहीं आपके उपदेशों से अनुप्राणित हो अनेक कल्याणकारी संगठनों की सुदृढ़ नींव पड़ी है। आप जहाँ एक परम्परावादी महान् संतों की शृंखला में शीर्षस्थ थे वहीं प्रगतिशील एवं सुधारवादी संतों में उच्चकोटि के विचारक रहे। आपने ज्ञानाराधक के रूप में सम्यक्ज्ञान प्रचारक मंडल, सामायिक संघ, स्वाध्याय संघ, जैन सिद्धान्त शिक्षण संस्थान, जैन इतिहास समिति आदि संस्थाओं को खोलने की प्रेरणा दी वहीं समाज सुधारक के रूप में स्वधर्मी वात्सल्य समिति एवं अखिल भारतीय महावीर जैन श्राविका समिति जैसी संस्थाओं का मार्गदर्शन कर तथा स्वाध्यायी बन पर्युषण में सेवा देने की प्रेरणा देकर महिलाओं को घर की चार दीवारी से निकलकर कार्य करने की प्रेरणा दी तथा सदियों से जीवन-निर्माण क्षेत्र में पिछड़ी हुई मातृ शक्ति को कार्य क्षेत्र में उतरने का आह्वान किया।

वे यदाकदा फरमाते रहते थे कि साधना के मार्ग में स्त्री-पुरुष में कोई विभेद नहीं है। स्त्रियों की संख्या धर्म-क्षेत्र में सदैव पुरुषों से अधिक रही है। सभी कालों में साधुओं की अपेक्षा साध्वियाँ, श्रावकों की अपेक्षा श्राविकाएँ अधिक रही हैं। यहाँ तक कि तीर्थंकर पद तक को उन्होंने प्राप्त किया है, अतएव महिलायें तो धर्म की रक्षक रही हैं। इन्हीं माताओं की गोद में महान् पुरुषों का लालन-पालन होता है और उनके कंठ से मधुर ध्वनि फूट पड़ी—

"ऋषभदेव और महावीर से, नर वर जाये हैं।
राम कृष्ण तेरे ही सुत हैं, महिमा छाई हो॥
जन-जन वंदन सब ही तुम पर, आश धरावे हो।
युग-युग से तुम ही माता बन, पूजा पाई हो॥"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उक्त पंक्तियों द्वारा मातृ शक्ति की महिमा का गुणगान ही नहीं किया बल्कि भविष्य में आशा की किरण भी उन्हें माना है। उनका कहना था—सती मदालसा की भाँति 'शुद्धोसि, बुद्धोसि, निरंजनोसि' की लोरी सुनाकर माता सत्कार्य की ऐसी प्रेरणा दे सकती है जो १०० अध्यापक मिलकर जीवन भर नहीं दे सकते।

वास्तव में पुरुष और स्त्री गृहरूपी शकट के दो चक्र हैं। उनमें से एक की भी खराबी पारिवारिक जीवन रूपी यात्रा में बाधक सिद्ध होती है। योग्य स्त्री सारे घर को सुधार सकती है, वह नास्तिक पुरुष के मन में भी आस्तिकता का संचार कर सकती है। महासती सुभद्रा ने अपने अन्यमति पति को ही नहीं पूरे परिवार को धर्म में प्रतिष्ठित कर दिया। धर्म के प्रति उसकी निष्ठा ने कच्चे धागों से बंधी चलनी से भी कुए से पानी खींच कर दिखा दिया। व्यवहार में यह कथा अनहोनी लगती है लेकिन आत्मिक शक्तियों के सामने प्राकृतिक शक्तियों को नतमस्तक होना पड़ता है।

दर्शन की कसौटी पर खरे रहें—आचार्य श्री फरमाया करते थे कि हमारी साधना का लक्ष्य है आठ कर्मों को और उनकी बेड़ियों को काटकर आत्मा को शुद्ध, बुद्ध, निरंजन-निराकार, निर्लेप एवं अनन्त आनन्द की अधिकारी बनाना परन्तु यह लक्ष्य तब तक प्राप्त नहीं हो सकता जब तक कि हमारी साधना क्रम पूर्वक न चले। दर्शन की नींव पर ही धर्म का महल खड़ा रहता है। दर्शन के बिना तो ज्ञान भी सम्यक् नहीं कहला सकता अतएव पहले सच्ची श्रद्धा एवं निष्ठा हो। एक ओर बहनें संत-सतियों के मुँह से अनेक बार सुनती हैं कि प्रत्येक प्राणी को अपने कर्मानुसार ही सुख-दुःख मिलते हैं, जब तक जीव की आयु पूरी नहीं होती तब तक कोई मारने वाला नहीं और दूसरी तरफ भैरू, भोपे के यहाँ जाना, दोनों में विरोधाभास लगता है। अच्छे-अच्छे धर्म के धुरन्धर कहलाने वाले भाई-बहन जहाँ पशु-पक्षियों की बलि होती है, पंचेन्द्रिय जीवों की हत्या होती है, वहाँ जाकर मस्तक झुकाने एवं चढ़ावा चढ़ाने वाले मिल जायेंगे। वे दृढ़ता से फरमाते थे कि अगर नवकार मंत्र पर पूरे विश्वास से पंच परमेष्ठी की शरण में रहें तो न किसी देव की ताकत है न किसी देवी की ताकत और न किसी मानव अथवा दानव की ही ताकत है कि उनमें से कोई भी किसी प्राणी के पुण्य और पाप के विपरीत किसी तरह से उनके सुख-दुःख में उसके भोगने व त्यागने में दखलनंदाजी कर सके। वह तो परीक्षा की घड़ी होती है अतएव बहनें कठिन परिस्थितियों में भी धर्म के प्रति सच्ची निष्ठावान बनी रहें तथा सच्चे देव-गुरु एवं धर्म की आराधक बनें। यही धर्म का सार अथवा उसका मूल है—"दंसणमूलो धम्मो।"

ज्ञान-पथ की पथिक बनो—आचार्य श्री बहनों के भौतिक और

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

आध्यात्मिक दोनों ज्ञान के लिये सतत प्रेरणा देते थे। उनका कहना था कि जिस प्रकार नल के द्वारा गगन चुम्बी अट्टलिकाओं पर पानी पहुँच जाता है, वैसे ही ज्ञान-साधना द्वारा आत्मा का ऊर्ध्वगमन हो जाता है। प्राणी मात्र के हृदय में ज्ञान का अखंड स्रोत है, कहीं बाहर से कुछ लाने की आवश्यकता नहीं, परन्तु निमित्त के बिना उसका प्रकटीकरण संभव नहीं है। स्वाध्याय निमित्त बन तूली के घर्षण का काम कर ज्ञान-शक्ति को अभिव्यक्त कर सकता है। आज सत् साहित्य की अपेक्षा चकाचौंधपूर्ण साहित्य का बाहुल्य है। नव-शिक्षित एवं नई पीढ़ी उस भड़कीले प्रदर्शन से सहज आकर्षित हो बहकने लगते हैं, अतएव गंदे साहित्य को मल की तरह विसर्जित करने की सलाह देते थे तथा सत्साहित्य के पाठन-पठन हेतु सदा प्रेरित करते रहते थे। जब भी मैं दर्शनार्थ पहुँचती तो पूछते-स्वाध्याय तो ठीक चल रहा है।

ज्ञान की सार्थकता आचरण में—ज्ञान एवं क्रिया का समन्वय ही मोक्ष मार्ग है अन्यथा जानकारी बुद्धि-विलास एवं वाणी-विलास की वस्तु रह जायेगी। गधे के सिर पर बावना चंदन है या सादी लकड़ी यह वह नहीं जानता। उसके लिये वह बोझा है। बिना समझ एवं आचरण के ज्ञान भी ऐसा ही बोझा है। आचार्य श्री ने ज्ञान के साथ आचरण और आचरण के साथ ज्ञान जोड़ने की दृष्टि से सामायिक एवं स्वाध्याय करने की प्रेरणा दी। प्रवचनों के दौरान सामायिक के स्मरण का वर्णन करते हुए मौन सामायिक तथा स्वाध्याययुक्त समायिक के लिये ही प्रोत्साहित करते थे। क्योंकि ज्ञान ही मन रूपी घोड़े पर लगाम डाल सकता है—

"कसो वस्त्र से तन को, ज्ञान से मन को समझावो हो।
'गज मुनि' कहे, उच्च जीवन से होत भलाई हो।।"

आचरण का निखार तप से—आचार्य श्री बहनों की तपाराधना के बहुत प्रशंसक थे, लेकिन तप ऐसा हो जिससे जीवन में निखार आवे। तप और धर्म-क्रिया न तो लोक-परलोक की कामना से हो न सिद्धि-प्रसिद्धि की भावना हेतु हो। कामना पूर्वक तप करना उसे नीलामी चढ़ाना है। पीहर के गहने कपड़ों की इच्छा या कामना तपश्चर्या की शक्ति को क्षीण करती है क्योंकि वह कामना लेन-देन की माप-तौल करने लगती है। महिमा, पूजा, सत्कार, कीर्ति, नामवरी, अथवा प्रशंसा पाने के लिये तपने वाला जीव अज्ञानी है। अतएव आचार्य श्री बहनों को विवेकयुक्त तप करने तथा तपश्चर्या पर लेन-देन न करने के नियम दिलवाया करते थे। वे व्याख्यान में फरमाया करते थे कि तपस्या के समय को और उसकी शक्ति को जो मेंहदी लगवाने, बदन को सजाने, अंलकारों से सज्जित करने में व्यर्थ ही गंवाते हैं, मैं समझता हूँ ऐसा करने वाले

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

भाई-बहिन तप के सही स्वरूप को और उसकी सही महिमा को नहीं समझते हैं। मेंहदी क्या रंग लायेगी तप के रंग के सामने ? रंग तो यह तपश्चर्या अधिक लायेगी। तप के साथ अगर भजन किया, प्रभु-स्मरण किया, स्वाध्याय, चिंतन किया तो वही सबसे ऊँचा रंग है। तपस्या के नाम पर तीन बजे उठकर गीत गाया जावे और उसमें भी प्रभु-स्मरण के साथ दादा, परदादा, बेटे-पोते का नाम लिया जाये तो वह तप में विकृति है, तप का विकार है।

सच्चे तप की आराधक—तपश्चर्या करने वाली माताएँ शास्त्र-श्रवण, स्वाध्याय और स्मृति को लेकर आगे बढ़ेंगी तो यह तप उनकी आत्म-समाधि का कारण बनेगा, मानसिक शांति और कल्याण का हेतु बनेगा तथा विश्व में शांति स्थापना का साधन बनेगा। प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य और स्वाध्याय ये चारों चौकीदार तपस्या के साथ रहेंगे तब तपश्चर्या का तेज और दिव्य ज्योति कभी खत्म नहीं होगी। तपश्चर्या करने के पश्चात् भी बात-बात में क्रोध आता है तब कर्मों का भार अधिक हल्का नहीं होगा। तपश्चर्या का मूल लक्ष्य है कर्म की निर्जरा, पूर्व संचित कर्मों को नष्ट करना। अतएव कर्म के संचित कचरे को जलाने के लिये, एकान्त कर्म-निर्जरा के लिये कर्म काटने हेतु ही तप करना चाहिये। मात्र अन्न छोड़ना ही तप नहीं। अन्न छोड़ने की तरह, वस्त्र कम करना, इच्छाओं को कम करना, संग्रह-प्रवृत्ति कम करना, कषायों को कम करना भी तप है।

"सदाचार सादापन धारो।
ज्ञान ध्यान से तप सिणगारो।।"

इस तरह तप के वास्तविक स्वरूप का दिग्दर्शन कराकर आचार्य श्री बहनों को शुद्ध तप करने को प्रेरित कर रूढ़ियों से ऊपर उठने की प्रेरणा देते जिसका प्रभाव हमें प्रत्यक्ष आज दिखायी दे रहा है। तपश्चर्या में दिखावापन धीरे-धीरे कम हो रहा है।

तप के साथ दान-सोने में सुहागा—आचार्य श्री तप के साथ दान देने को सोने में सुहागा की उपमा देते थे। तप से शरीर की ममता कम होती है और दान से धन की ममता कम होती है और ममत्व कम करना ही तपश्चर्या का लक्ष्य है। तप के नाम से खाने-पीने, ढोल-ढमाके में जो खर्च किया जाता है वह पैसा सात्विक दान में लगाना चाहिये। हर व्यक्ति तप-त्याग के साथ शुभ कार्यों में अपने द्रव्य का सही वितरण करता रहे तो "एक-एक कण करते-करते मण" के रूप में पर्याप्त धनराशि बन जाती है जिसका उपयोग दीन-दुःखियों की सेवा, स्वधर्मी भाई की सेवा, संघ की सेवा में किया जा सकता है।

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

इस तरह आचार्य श्री तत्त्ववेत्ता के साथ सच्चे समाज-सुधारक थे। वे पर उपकार को भूषण मानते थे। उन्हीं के शब्दों में—

"सज्जन या दुर्बल सेवा, दीन हीन प्राणी सुख देना,
भुजबल वर्धक रत्नजटित्व, भुजबंध लो जी।"

वे तपश्चर्या के समय पीहर पक्ष की ओर से मिलने वाले प्रीतिदान को उपयुक्त नहीं मानते थे। क्योंकि कई बार यह तपस्या करने वाली उन बहिनों के मार्ग में रोड़े अटकाता जिनके पीहर वालों की खर्च करने की क्षमता नहीं होती। अतएव आचार्य श्री तपश्चर्या के नाम से दिये जाने वाले प्रीतिदान के हिमायती कभी नहीं रहे।

शील की चूंदड़ी एवं संयम का पैबंद लगाओ—आचार्य भगवन् बहनों के संयमित जीवन पर बहुत बल देते थे। उनका उद्घोष था "जहाँ सदाचार का बल है वहाँ नूर चमकाने के लिये बाह्य उपकरणों की आवश्यकता नहीं होती, बाह्य उपकरण क्षणिक हैं, वास्तविक सौन्दर्य तो सदाचार है जो शाश्वत है, अमिट है। उम्र बढ़ने के साथ बचपन से जवानी से बुढ़ापा आता है, झुरियें भी पड़ती हैं लेकिन आत्मिक शक्ति उम्र बढ़ने के साथ रंग ही लाती है, बदरंग नहीं करती।"

युग बदलने के साथ हमारे जीवन के तौर-तरीकों में बहुत अंतर आ गया है। हमारी भावी पीढ़ी चारित्रिक सौन्दर्य के बजाय शरीर-सौन्दर्य पर अधिक बल दे रही है। उस सौन्दर्य के नाम पर जिस कृत्रिम भौण्डेपन का प्रदर्शन किया जा रहा है उसमें हिंसा और क्रूरता का भाव मिला हुआ है। आचार्य श्री फैशनपरस्त वस्तुओं के उपयोग के सख्त खिलाफ थे। वे 'सादा जीवन और उच्च विचार' को सन्मार्ग मानते थे। उनका उद्घोष था—

"ये जर जेवर भार सरूपा।"

इनके चोरी होने का डर रहता है। इनसे दूसरों में ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न होता है और अनैतिकता को बढ़ावा मिलता है। सास से बहू को ताने सुनने पड़ सकते हैं, १० साल की लड़की ५० साल के बुढ्ढे को परणाई जा सकती है और तो और दो तौले के पीछे अपनी जान खोनी पड़ सकती है। अतएव गहना-कपड़ा नारी का सच्चा आभूषण नहीं, श्रेष्ठ आभूषण तो शील है—

"शील और संयम की महिमा तुम तन शोभे हो।
सोने, चांदी हीरक से नहीं, खान पुजाई हो।।"

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org

उन्होंने उक्त दो पंक्तियों में गागर में सागर भर दिया है। यदि सोने-चांदी से ही किसी की पूजा होती तब तो सोने-चांदी व हीरे के खानों की पूजा पहले होती। इस सोने-चांदी से शरीर का ऊपरी सौन्दर्य भले ही कुछ बढ़ जाय मगर अंतःकरण की पवित्रता का ह्रास होने की संभावना रहती है, दिखावे की प्रवृत्ति को बढ़ावा मिल सकता है तथा अंहकार की पूंछ लम्बी होने लगती है। त्याग, संयम और सादगी में जो सुन्दरता, पवित्रता एवं सात्विकता है वह भोगों में कहाँ ? जिस रूप को देखकर पाप कांपता है और धर्म प्रसन्न होता है वही सच्चा रूप एवं सौन्दर्य है। आचार्य जवाहरलालजी म. सा. ने भी फरमाया है—

"पतिव्रता फाटा लता, नहीं गला में पोत।
भरी सभा में ऐसी दीपे, हीरक की सी जोत ।।"

जगत्-वन्दनीय बनें—आचार्य श्री को मातृ शक्ति से देश, धर्म और संघ सुधार की भी बड़ी आशायें रहीं। वे मानते थे कि भौतिकता के इस चकाचौंध पूर्ण युग में जगत् जननी माता के द्वारा ही भावी पीढ़ी को मार्गदर्शन मिल सकता है, पुरुषों को विलासिता में जाने से रोका जा सकता है और कुव्यसनों से समाज को मुक्त रखा जा सकता है। उन्हीं के शब्दों में—

"देवी अब यह भूषण धारो, घर संतति को शीघ्र सुधारो,
सर्वस्व देय मिटावो, आज जगत् के मर्म को जी।
धारिणी शोभा सी बन जाओ, वीर वंश को फिर शोभाओ,
'हस्ती उन्नत कर दो, देश, धर्म अरु संघ को जी ।।

अतएव आचार्य भगवन् ने ज्ञान-पथ की पथिक, दर्शन की धारक, सामायिक की साधक, तप की आराधक, शील की चूँदड़ी ओढ़े, संयम का पैबंद, दया व दान की जड़त लगी जिस भारतीय नारी की कल्पना की है, वह युग-युगों तक हम बहनों के जीवन का आदर्श बनकर हमारा पथ-प्रदर्शन करती रहेगी।

—परियोजना निदेशक, जिला महिला विकास अभिकरण, जोधपुर

• • •

Jain Educationa International For Personal and Private Use Only www.jainelibrary.org